गीता के आधार पर आत्मा का स्वरूप

डा० निखिलेश कुमार
संस्कृत विभाग
महाराजा कॉलेज, आरा

:– वैसे तो आत्मा के स्वरूप की विवेचना प्राय: अनेक ग्रन्थों में की गई है। परन्तु इसके रहस्य बहुत ही गूढ़मय है। फिर भी गीता के द्वितीय अध्याय में वर्णित आत्मा के स्वरूप की जो विवेचना की गई है वह अपने आप में अद्वितीय और अभूतपूर्व है। उपनिषदों की सबसे बड़ी देन प्राण य आत्मा सम्बन्धी सिद्धान्त है। उपनिषद ग्रन्थ ही ज्ञान और कर्म सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं। सभी उपनिषदों का लक्ष्य जीव और परमात्मा का ही अध्ययन करना रहा है। लेकिन गीता में तो प्राण व आत्मा, ज्ञान और कर्म तथा ब्रह्म का भी सम्यक रूप से विवेचन किया गया है। और यही कारण है कि उपनिषदों का सार संक्षिप्त होने पर भी गीता का स्थान सम्पूर्ण उपनिषदों में भी सर्वोच्च हो जाता है। इसमें श्रीकृष्ण और अर्जुन तथा संजय और धृतराष्ट्र का मधुरतम संवाद है।

हमें यहाँ यह भी स्मरणीय रखना चाहिए कि पुर्नजन्म सम्बन्धी सिद्धांत तो उपनिषदों की ही देन है और गीता में यह सिद्धान्त पुर्नस्थापित हो जाता है। जब अर्जुन युद्धक्षेत्र में अपने स्वजनों को देखता है तो वह मोहग्रस्त हो जाता है वह विषाद करने लगता है तब श्री भगवान उसके विषाद को समाप्त करते हुए करते हैं कि हे अर्जुन–

"न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपा:।
न चैव न भविष्याम: सर्वे क्यमत: परम ॥ 12 ॥" द्वितीय अध्याय

अर्थात् यह आत्मा नित्य है इसके लिए तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये क्योंकि न तो ऐसा है कि मैं किसी काल में नहीं था अथवा- तू नहीं था अथवा यह राजा लोग नहीं थे और ऐसा नहीं है कि इससे आगे हम सब नहीं रहेंगे। इस प्रकार जीवात्मा के स्वरूप का सुन्दरतम ढंग से वर्णन किया गया है। जैसे–जीवात्मा की इस देह में कुमार, युवा और वृद्ध अवस्था होती है। वैसे ही अन्य शरीर की प्राप्ति होती है अर्थात् जैसे कुमार, युवा और जरा अवस्था रूप स्थूल शरीर का विकार अज्ञान से आत्मा में दिखता है वैसे ही एक शरीर से दूसरे शरीर को प्राप्त होना भी, सूक्ष्म शरीर का विकार भी अज्ञान से ही आत्मा में दिखता है। इसलिये तत्वज्ञ पुरुष मोहित नहीं होता है। परमात्मा के स्वरूप एवं उसकी नश्वरता का निरुपण करते हुये भगवान कहते हैं कि नाशरहित तो उसको जानो कि जिससे यह सम्पूर्ण संसार व्याप्त है क्योंकि इस अविनाशी का विनाश करने को कोई भी समर्थ नहीं है। नाशरहित अप्रमेय नित्यस्वरूप जीवात्मा से बने यह सब शरीर नाशवान् कहे गये हैं इसलिये हे अर्जुन युद्ध करो। भगवान आत्मा को मारनेवाला और 'मरनेवाला' मानने वाले की निन्दा करते हुए कहते हैं यथा–

"य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ॥ 19 ॥" द्वितीय अध्याय

अर्थात् जो इस आत्मा को मारनेवाला समझता है तथा जो इसको मरा मानता है वे दोनों ही नहीं जानते हैं क्योंकि यह आत्मा न मारता है और न मारा जाता है। पुन: आत्मा के शुद्ध स्वरूप का कथन करते हुए कृष्ण कहते हैं कि आत्मा किसी काल में भी न जन्मता है और न मरता है अथवा न यह आत्मा ही मरके फिर होनेवाला है क्योंकि यह अजन्मा नित्य शाश्वत

और पुरातन है। शरीर के नाश होने पर भी यह नाश नहीं होता है। हे पृथापुत्र अर्जुन जो पुरुष इस आत्मा न नाश रहित नित्य, अजन्मा और अव्यय जानता है वह पुरुष कैसे किसको मरवाता है और कैसे किसको मारता है। अर्थात् जो व्यक्ति इस आत्मा को अजन्मा और अविनाशी जानता है उसकी ही प्रशंसा करनी चाहिए।

इतना ही नहीं वस्त्र परिवर्तन की भाँति ही जीवात्मा के शरीर की भी अदला-बदली होती रहती है। वस्त्र से आत्मा के दृष्टान्त का यह श्लोक साहित्य का कण्ठाहार बना हुआ है यथा—

"वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृहणाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णन्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥22॥" *द्वितीय अध्याय*

अर्थात् यदि तुम कहो कि मैं तो शरीरों के वियोग का शोक करता हूँ तो यह भी उचित नहीं हैं—क्योंकि जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर दूसरे नये वस्त्रों को ग्रहण करता है वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरों को त्यागकर दूसरे नये शरीरों को प्राप्त होता है। गीताजी के इसी आशय को ग्रहण कर राष्ट्रीय प्रेम के प्रबल पुरोधा, हिन्दी साहित्य के खण्डकाव्य प्रणेता पं० रामनरेश त्रिपाठी जी ने 'पथिक' नामक कृति में इस प्रकार लिखा है—यथा—"मृत्यु एक सरिता है जिसमें श्रम से कातर जीव नहाकर, फिर नूतन वस्त्र धारण करता है कायारूपी वस्त्र बहाकर। निर्भय स्वागत करो मृत्यु का, मृत्यु एक विश्राम स्थल है। जीव जहाँ से फिर चलता है, धारण कर बन जीवन सम्बल।"

शरीर की समाप्ति पर भी मृत्योपरान्त जो कुछ अवशिष्ट रहा जाता है वही आत्मा है अर्थात् यह आत्मा सदैव एक ही तरह रहती है। हवा इसे सुखा नहीं पाती और न पानी इसे गीला कर पाता है। हथियार इसे काट नहीं सकता और अग्नि इसे जला नहीं सकती है यथा श्लोक से अभिव्यक्त हो रहा है—

"नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारूतः ॥23॥" *द्वितीय अध्याय*

इतना ही नहीं यह आत्मा अच्छेद्य है, यह आत्मा अदाह्य है यह अक्लेष एवं अशोष्य है तथा यह नित्य निःसंदेह सर्वव्यापक अचल स्थिर रहनेवाला और सनातन है। यह अव्यक्त इन्द्रियों का अविषय और यह आत्मा अचिन्त्म अर्थात् मन का अविषय और यह आत्मा विकाररहित अर्थात् न बदलनेवाला कहा जाता है। इस आत्मा को ऐसा समझकर तुम्हें शोक नहीं करना चाहिए। यदि तुम इसको हमेशा जन्म लेनेवाला और सदा मरनेवाला मानते तो भी हे अर्जुन इस प्रकार शोक करना योग्य नहीं हैं।

श्रीकृष्ण आत्मा की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि—

"जातस्य हि ध्रुवो ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्माद परिहार्येऽर्थे न त्वं शेचितुर्महसि ॥27॥" *द्वितीय अध्याय*

अर्थात् ऐसा होने से तो जन्मनेवाले की निश्चित मृत्यु और मरनेवाले का निश्चित जन्म होना सिद्ध हुआ, इससे भी तुम इस बिना उपायवाले विषय में शोक करने योग्य नहीं हो। यह आत्मतत्व बड़ा ही गहन है क्योंकि कोई महापुरुष भी इस आत्मा को आश्चर्य की तरह देखता है और वैसे ही दूसरा कोई भी महापुरुष आश्चर्य की तरह इसको तत्व कहता है और दूसरा कोई भी इस आत्मा को आश्चर्य की तरह सुनता है और कोई-कोई सुनकर भी इस आत्मा को नहीं जानता है। यह आत्मा सबके शरीर में सदा ही अबध्य है। इसलिये सम्पूर्ण भूतप्राणियों के लिए तुम्हें शोक करने की जरूरत नहीं है। विद्वान पुरुषों ने उस जीवात्मा को परमात्मा का अंश माना है। अर्थात् दोनों के सम्बन्ध को छाया और धूप के समान कहा है। आत्मा शब्द से आत्मा और परमात्मा को ग्रहण किया जाता है।

2026.02.03 09:38

यह आत्मा न जन्म लेती है और न यह मृत्यु को ही प्राप्त करती है। अर्थात् यह अजर और अमर है। यथा इस श्लोक में दर्शनीय है—

''जा जायते म्रियते वा कदाचिन् नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥20॥'' *द्वितीय अध्याय*

अर्थात् यह आत्मा किसी काल में भी न जन्मता है और न मरता है अथवा न वह आत्मा हो करके फिर होनेवाला है क्योंकि यह अजन्मा नित्य शाश्वत और पुरातन है। शरीर के नाश होने पर भी इसका नाश नहीं होता है। अर्थात् आत्मा और ब्रह्म दोनों मिलकर एक हो जाते हैं। हिन्दी साहित्य के भक्त कवि सूरदास जी ने भी आत्मा को ब्रह्म का ही रूप माना है जैसा कि उन्होंने स्वयं लिखा है कि—''एक जीव एक ब्रह्म कहावत्।'' इत्यादि। तथा रामचरितमानस में भी गोस्वामी जी ने लिखा है कि आत्मा ही ब्रह्म है यथा—''उभय बीच सिय सोहती कैसी ब्रह्म बीच माया छवि जैसी।'' एवं संत तथा दार्शनिक कवि महात्मा कबीर दास जी ने लिखा है कि आत्मा ही निरंजन रूप में घूमता है—

''निरंजन माला घट में फिरै दिन रात।''

और कठोपनिषद् में भी आत्मा को वायु की तरह सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान एवं संचरणशील माना गया है। और गीता में आत्मा के प्राण सिद्धांत को विवेचन की गई है। और एतरेयोपनिषद में तो आत्मा के परिवर्त्तन को इस प्रकार प्रदर्शित किया गया है कि संतान तो आत्मा का ही दूसरा रूप है ''यथा आत्मा वै जायते पुत्रः।'' तथा श्राद्धकल्प और पितृकल्प में भी आत्मा के विविध रूपों का वर्णन किया गया है। गरूड़पुराण तो आत्मा के महाप्रयाण को इस लोक से लेकर विष्णु लोक तक की यात्रा का सुन्दर रूप प्रस्तुत कर देता है। यह आत्मा के अनेकविध रूपों की झाँकी प्रस्तुत करती है। मुखाग्नि देते समय जो मंत्र का आवाह्न किया जाता है वह आत्मा के रूपों को ही दिखलाता है यथा—''धर्माधर्म समायुक्त लोभ मोह समन्वितः दहयन्ते सर्वगात्राणि विष्णुलोकं स गच्छति।।''

अर्थात् धर्म अधर्म से युक्त लोभ और मोह से संयुक्त यह आत्मा शरीर के सम्पूर्ण अंगों के जलने पर दिव्य लोक की यात्रा करता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि गीता में श्रीकृष्ण भगवान ने आत्मा के स्वरूप का वर्णन अर्जुन के मोह को समाप्त करने के लिए और कर्त्तव्य अर्थात् युद्ध करने की प्रेरणा के लिए दिया है। संक्षेप में आत्मा का यही रूप गीता में वर्णित है।